अंक: 106 ■ फरवरी-मार्च 2018
संयुक्त अंक
30 रुपए

मनस्वी विशेषांक

मनस्वी

श्रेष्ठ विचारों की मनभावन पत्रिका
RNI NO. MPHIN/2002/7195
REGISTERED WITH REGISTRAR OF NEWS PAPERS FOR INDIA UNDER NO. MPHIN/17327/2002-TC

1969

1975

सुधा अरोड़ा

कथायात्रा के पाँच दशक

मधू भंडारी, मृदुला गर्ग, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, विश्वनाथ सचदेव, सूर्यबाला, अर्चना वर्मा, विजय कुमार, डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, नवनीत मिश्र, तथा अन्य

इस अंक में

साहित्यिक व पारिवारिक हिन्दी पत्रिका

मनस्वी

वर्ष – 20
अंक – 106
फरवरी-मार्च 2018

प्रधान संपादक
मनमोहन सरल

संपादक
मुरली मोहन

सहसंपादक
शुभांगी चौधरी

मुखपृष्ठ
मनस्वी

संपादकीय कार्यालय–
103, कोठारी टेरेस,
8/8, न्यू पलासिया,
इन्दौर–1

ई–मेल
manasvimonthly@gmail.com

मूल्य : 30 रुपए
वार्षिक शुल्क : 360 रुपए
(मय डाक खर्च)
भुगतान : मनीऑर्डर/बैंक ड्राफ्ट
(मनस्वी के नाम से भेजें)

सभी विवादों को निपटारा इंदौर की सीमा में आने वाली सक्षम अदालतों और फोरमों में किया जाएगा।

विधि सलाहकार – दिलीप राजपाल

- **आत्मकथ्य**
  हर अँधेरा उजाले की पूर्वपीठिका है! – सुधा अरोड़ा/9
- **सुधा अरोड़ा की कविताएँ** – कंधे/13
  यात्रा पर औरत/14
  पीले पत्तों पर ओस की बूंदें/27
  अकेली औरत का हँसना/..... औरत का रोना/28–29
- **संस्मरण** – मैं और मेरी सुधा – मन्नू भंडारी/15
  सुधा के साथ प्रथम दृष्टया प्रेम का..... – सूर्यबाला/23
  जलती रहे आग – विश्वनाथ सचदेव/30
- **लघुकथा** – बड़ी हत्या, छोटी हत्या – सुधा अरोड़ा/32
- **टिप्पणी**– एकालाप का संवाद हो जाना –मृदुला गर्ग/33
- **समीक्षा**– आम औरत ज़िंदा सवाल–डॉ. जयश्री सिंह/36
- **कहानी** – उधड़ा हुआ स्वेटर – सुधा अरोड़ा/39
- **परिचय** – सुधा अरोड़ा/47
- **रचना प्रक्रिया** –
  उधड़े हुए स्वेटर को बुनते हुए – सुधा अरोड़ा/57
- **प्रतिक्रियाएँ**– प्रेम विहीन लगते.....– नवनीत मिश्र/56
  कलात्मक उठान की अनूठी कहानी– मधु कांकरिया/56
  अकल्पनीय संभावनाओं की चित्रकथा– राजेन्द्र राव/62
  पुरुषसत्ता के दुर्ग को ढहाता..... – ओमप्रकाश मिश्र/63
  दक्षता और कौशल की अभिव्यक्ति– डॉ. अर्चना वर्मा/70
  बिना कीचड़ में धँसे भी कमल.....– अनिलप्रभा कुमार/71
  ...कि हम भीतर से..... – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे/72
  स्त्री की निजता को निबाहती.... – हरिचरण प्रकाश/77
  अद्‌भुत और मर्मभेदी कहानी – विजय कुमार/78
- **आकलन** – व्यवस्था के.... – जगदम्बा प्रसाद दीक्षित/79

मुद्रक व प्रकाशक स्वत्वाधिकारी मुरली मोहन द्वारा स्पार्ट ग्राफिक्स, एम.जी. रोड, इन्दौर से मुद्रित एवं 103, कोठारी टेरेस, 8/8 न्यू पलासिया इन्दौर से प्रकाशित

आम औरत ज़िंदा सवाल

• डॉ. जयश्री सिंह

लेखिका द्वारा आम औरतों की समस्याओं पर उठाए गए ये सवाल पाठकों के मन को पूरी तरह से झकझोर देते हैं उन्हें यह सोचने पर विवश कर देते हैं कि भारत की एक आम औरत अपने परिवार और आसपास के लोगों द्वारा जाने अनजाने में दी गई प्रताड़ना के कारण आत्महत्या या पागलपन के कगार पर पहुँच जाती है।

जन पक्षधरता की प्रबल और निष्ठावान लेखिका होने के साथ-साथ सुधा अरोड़ा जी महिलाओं के अधिकारों के प्रति आवाज़ उठाने तथा उनकी समस्याओं को सुलझाने में भी सतत कार्यरत रही हैं। सुधा जी लंबे समय तक मुंबई के 'हेल्प' नामक महिला संगठन से जुड़ी रहीं। संस्था से सहायता और सलाह लेने के लिए आने वाली महिलाओं की समस्याओं पर विचार विमर्श करने के साथ -साथ वे स्त्रियों के मानवधिकारों से संबंधित प्रश्नों को समय-समय पर 'दैनिक जागरण', 'जनसत्ता', 'अंतरंग संगिनी', 'नवभारत टाइम्स', 'महानगर', 'सहारा समय', 'कथादेश', 'धर्मयुग', 'हंस' तथा 'कथाचित्र' जैसे पत्र-पत्रिकाओं में उजागर करती रहीं। उन्होंने नियमित रूप से मुंबई के 'दैनिक जागरण' के साप्ताहिक स्तंभ 'वामा' में महिलाओं पर होने वाली घरेलू हिंसा एवं मानसिक उत्पीड़न के प्रश्नों को समाज के सामने लाने का सफल प्रयास किया।

महिलाओं के बहुआयामी उत्पीड़न एवं पथराए मौन के खिलाफ़ उनकी संक्षिप्त, बेबाक और ईमानदार टिप्पणियों ने समाज में हलचल पैदा कर दी। 'आम औरत ज़िंदा सवाल' पुस्तक में संकलित टिप्पणियों में गाँव-कस्बे की दलित औरत से लेकर उच्च वर्ग की औरतों की दैनंदिन समस्याओं के साथ सुधा जी धर्म, मीडिया, फ़िल्म, सांप्रदायिकता, नैतिकता, सामाजिक मूल्य, घरेलू हिंसा, यौन शोषण, मानसिक यातना और आत्महत्या जैसे विविध मुद्दों पर एक साथ टकराती नज़र आती हैं। औरत को भारतीय सामाजिक पृष्ठभूमि पर रखकर उसके लिए नैसर्गिक स्थान की माँग करना उनके चिंतन का बीजसूत्र रहा है।

आम औरत से संबंधित सवालों पर लिखी गयी बेबाक टिप्पणियों को लेखिका ने इस पुस्तक में पाँच भागों में विभाजित किया है। सबसे पहले भाग 'गुमशुदा दोस्त की तलाश' में उन्होंने अपने जीवन के उन पृष्ठों को खोलने का प्रयास किया है जहाँ पर मध्यमवर्गीय परिवार की समस्याओं से जूझती अपनी ही माँ से प्रेरित हो-कर वे स्वयं अपने भीतर की बेबाक लेखिका को ढूँढ़ती नज़र आती हैं। दूसरे प्रकरण 'वामा' में सन 1995 से 2000 तक के 'दैनिक जागरण' के साप्ताहिक कॉलम 'वामा' में छपे हुए लेखों को संकलित किया गया है। जिनमें मुख्य रूप से आम औरत की समस्याओं को भिन्न-भिन्न कोणों से देखने-परखने की कोशिश की गई है। तीसरे भाग 'आलेख' में आक्रमकता के खिलाफ़ आम औरत की आवाज़, मानसिकता प्रताड़ना, सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार, आत्महत्या तथा भंवरी देवी प्रकरण पर न्याय पालिका के फ़ैसले की विस्तृत टिप्पणी दी गयी है।

चौथे भाग 'मीडिया में औरत' में 'बैंडिड क्वीन' तथा 'बवंडर' जैसी फ़िल्मों के सामाजिक सरोकार पर सवाल उठाते हुए छोटे-बड़े पर्दों पर औरतों की स्थिति पर चर्चा की गयी है तथा उक्त समय में प्रकाश में आये मटुकनाथ और जूली के प्रेम प्रकरण के मामलों को उजागर करते हुए पुरुष वर्ग के विवाहेत्तर संबंधों का पर्दाफ़ाश भी किया

गया है पाँचवे और अंतिम भाग 'धर्म और औरत' कुरान की नारीवादी व्याख्या के आधार पर औरत की ज़िंदगी में धर्म के खलल को उद्घोषित करने का प्रयास किया है।

लेखिका द्वारा आम औरतों की समस्याओं पर उठाए गए ये सवाल पाठकों के मन को पूरी तरह से झकझोर देते हैं उन्हें यह सोचने पर विवश कर देते हैं कि भारत की एक आम औरत अपने परिवार और आसपास के लोगों द्वारा जाने अनजाने में दी गई प्रताड़ना के कारण आत्महत्या या पागलपन के कगार पर पहुँच जाती है।

भारतीय परिवार में एक औरत तब तक आदर्श मानी जाती है जब तक वह चुप रहती है। उम्र भर पति और बच्चों की गुलामी करने के बाद एक दिन अचानक पाती है कि एक फ़ालतू सामान की तरह घर में पड़ी है। एक समय के बाद बच्चों को उसकी ज़रूरत नहीं होती तथा पति के लिए वह एक आदत बन चुकी होती है। शादी के बाद अपनी नौकरी छोड़कर गृहणी बनी स्त्री अपने पति से गृहस्थी चलाने के लिए पैसे माँगे जाने पर संभ्रांत भिखारी की तरह अपमानित की जाती है। एक पढ़ी-लिखी समझदार औरत अपनी पूरी पढ़ाई लिखाई रसोई में झोंक देती है। दिनभर की मेहनत पर न ही उसे सम्मान मिलता है न ही कोई तनख्वाह ही मिलती है। घर खर्च के लिए भी एहसान के तौर पर उसकी हथेली पर पैसे रख दिए जाते हैं।

भारतीय संयुक्त परिवार में स्त्री का दर्ज़ा हमेशा एक घुसपैठिए जैसा होता है। कई बार उसके सपने पूरी तरह से तब बिखर जाते हैं जब उसका पति उसकी सारी खूबसूरती और वफ़ादारी के साथ उसे पत्नी के सिंहासन पर छोड़ अपने विवाहेत्तर संबंधों को शान से कायम रखता है। यह समस्या चाहे किसी भी वर्ग के परिवार की हो परंतु पति अपने विवाहेत्तर संबंधों को लेकर पूछे जाने वाले प्रश्नों को कभी बर्दाश्त नहीं कर पाता। कई बार ऐसी औरतें अपने जीवन का महत्वपूर्ण समय पति और परिवार वालों को अपना बनाने की कोशिश में खपा देने के बाद भी अपने को असफल पाती हैं और तब शुरू होती है उसके अस्तित्व, अपनी पहचान और अपने आकांक्षाओं की लड़ाई। जिसे हर औरत अपने-अपने तरीक़े से लड़ती है। कई बार उसके अपने पति या अपनों के द्वारा किया गया बलात्कार जीवन के एक भयानक सच की तरह उभरकर उसके जीवन के संपूर्ण सौंदर्य को ही नष्ट कर देता है। विवाह के बाद उस पर की जाने वाली हिंसा या मानसिक उत्पीड़न उसे पागलखाने तक पहुँचा देती है। पति की मृत्यु के बाद उसके द्वारा संपत्ति पर हक़ माँगे जाने पर उसे डायन घोषित कर गाँव में सरेआम पीट-पीटकर

पुस्तक में भंवरी और फूलन देवी के उदाहरण पुरुष वर्ग की दबंगई और क्रूरता के परिणाम स्वरूप आक्रामक रूप में परिवर्तित होती नज़र आती है। औरत की दुनिया के सामाजिक सरोकारों को इस प्रकार मौलिक ढंग से खंगालना और बेहद आसान और सीधी सरल भाषा में खरी-खरी बात कह देना इस पुस्तक की टिप्पणियों की विशेषता है।

मार दिया जाता है। गाँव कस्बे की दलित औरत की स्थिति तो और भी बद्तर है। परिवार गाँवों की गती पर अथवा किसी बात के खिलाफ़ उसके द्वारा आवाज़ उठाए जाने पर सज़ा रूप में उसके साथ सामूहिक बलात्कार कर गाँव में उसे निर्वस्त्र घुमाया जाने जैसी घटनाएँ सामने आती हैं। भंवरी देवी बलात्कार की शिकार महिला यदि हिम्मत जुटाकर न्यायपालिका के सामने खड़ी भी होती है तो वहाँ उसे अपमानित कर उसे उसकी हार का फ़ैसला सुनाया जाता है। मीडिया के चालक डायरेक्टर-प्रोड्यूसर ऐसे गर्माये हुए संवेदनशील मुद्दों पर सहानुभूति जुटाने के नाम पर फ़िल्में बनाकर करोड़ों रुपए का बिज़नेस कर लेते हैं तथा वह पीड़ित स्त्री न चाहते हुए भी सुर्खियों में आ जाती है और उसका जीना दूभर हो जाता है। कई बार धर्म के नाम पर भी महिलाओं के आबरू और अधिकार के साथ तरह-तरह के घिनौने खेल खेले जाते हैं।

'आम औरत ज़िंदा सवाल' पुस्तक के ज़रिये आम औरत के जीवन से संबंधित ज़िंदा सवालों को आलेखों के रूप में समाज के आगे रखा गया है। इन लेखों में आने वाली स्त्री पात्र दलित, मध्यम और उच्च वर्ग की उन स्त्रियों में से है जो अपने दैनिक जीवन में इन समस्याओं से गुज़रती हुई अपने जीवन से तंग आकर 'हेल्प' नामक संस्था में सलाह एवं सहायता के लिए पहुँचती हैं। अपने जीवन के इन उलझे हुए पन्नों को खोलती हुई वह एक प्रकार से आज़ादी का अनुभव करती है। जीवन के आधे उम्र में ही सही परंतु अपने बचे हुए जीवन को अपने तरीक़े से जीने का प्रयास करती है।

पुस्तक में भंवरी और फूलन देवी के उदाहरण पुरुष वर्ग की दबंगई और क्रूरता के परिणाम स्वरूप आक्रामक रूप में परिवर्तित होती नज़र आती है। औरत की दुनिया के सामाजिक सरोकारों को इस प्रकार मौलिक ढंग से खंगालना और बेहद आसान और सीधी सरल भाषा में खरी-खरी बात कह देना इस पुस्तक की टिप्पणियों की विशेषता है।

'आम औरत ज़िंदा सवाल' में पुस्तक में संकलित टिप्पणियाँ हर उस स्त्री को जागरूक बनाने का प्रयास करती हैं। जो वर्षों से अपने पति और परिवार के आगे नतमस्तक होकर अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने अधिकारों और उपेक्षाओं की बलि देती आ रही हैं। इसके ज़रिये सुधा जी उन्हें यह समझाने का प्रयास करती हैं कि ऐसी समस्याओं से गुज़रने वाली ये स्त्रियाँ अकेली नहीं हैं बल्कि एक संपूर्ण पीड़ित वर्ग है जो यदि एकजुट हो जाए तो पहाड़ की तरह लगने वाली इन समस्याओं से अपना पीछा छुड़ा सकती हैं और स्वतंत्र होकर नए सिरे से जीना प्रारंभ कर सकती हैं।

■

पृष्ठ 35 से टिप्पणी का शेष भाग

''दहलीज़ पर संवाद'' के बूढ़े पति-पत्नी बोलते हैं तो लगता है, अकेलापन बँट नहीं रहा, बढ़ रहा है। पाठक फिर श्रोता बनने पर मजबूर हो जाता है। सोचता है, क्या वह किन्ही और लोगों की बातें सुन रहा है या उसके अपने दिमाग़ में उपजी ख़ुराफ़ात है। सच्ची, कड़वी और लाइलाज।

''ऑड मैन आउट उर्फ़ बिरादरी बाहर'' कहानी के शीर्षक का द्वीभाषी होना संयोग नहीं, सप्रयोजन है क्योंकि उसमें कहानी का कथ्य अन्तर्निहित है। मंचस्थ नाटक की तर्ज़ में कहानी के मंच पर कमउम्र बच्चे हैं, नेपथ्य में उनके माँ-बाप या कहें, तरेड़ खाया आज का शहरी मध्यवर्गीय समाज। पात्र एक-दो नहीं, अनेक हैं पर मानीखेज़ किरदार सिर्फ़ एक है। उसे विषमता कह सकते हैं या बिरादरी के भीतर या बाहर होना। पर उसकी हक़ीकत ''ऑड मैन आउट'' पद से ही उजागर हो सकती थी क्योंकि इस बिरादरी के भीतरी जन हिन्दी का मुहावरा समझने में असमर्थ हैं। इन पाँच कहानियों में यह एक अकेली सकारात्मक कहानी है, जहाँ प्रवक्ता, बिरादरी बाहर बने रहने का निर्णय ख़ुद लेती है, अपनी ख़ुशी से। नकारात्मक कविता के व्यंग्य को पात्र ही नहीं पाठक भी हृदयंगम करके आशवस्त महसूस करता है।

''कुछ सीखो गिरगिट से
जैसी शाख वैसा रंग
जीने का यही है सही ढंग!
अपना रंग दूसरों से अलग पड़ता है तो
उसे रगड़-धो लो
जैसी है दुनिया
उसके साथ हो लो
व्यंग्य मत बोलो!''

यह पाँच कहानियाँ सुधा के दो कहानी संग्रहों, ''काला शुक्रवार'' और ''रहोगी तुम वही'' से ली गई हैं। आप चाहें इसे मेरा खब्त मानें पर मैं मानती हूँ कि समीक्षा, किसी एक कहानी संग्रह की नहीं, एक लय में बँधी चुनिंदा कहानियों की होनी चाहिए। ■